RESEARCH ARTICLE

विधिना | Vidhina

ISSN: (Online): 3049-3986

Publishing Today, Inspiring Tomorrow

Published Online | Special Issue. | Nov.2025 | pp.145-150

Quarterly, Multilingual, Multidisciplinary, Peer-Reviewed E-Research Journal

प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन में सुशासन का स्वरूप और सिद्धांत

* दीक्षा कुमारी

दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केन्द्र, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला|

Article Publication

Published Online -November 2025

Corresponding Author

दीक्षा कुमारी

दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केन्द्र,

हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला|

© 2025 - published by Vidhina

This is an open access article under the CC BY-NC 4.0

शोध पत्र का सार-

शोध पत्र शीर्षक में जिस दर्शन शब्द का प्रयोग हुआ है वह दर्शन' शब्द संस्कृत धातु 'दृश्' (दृश्ये) से बना है, जिसका अर्थ होता है देखना, जानना या अनुभूत करना। इससे 'दर्शन' शब्द का अर्थ हुआ देखने या आत्मानुभूति करने की क्रिया। शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से देखा जाये तो दर्शनम् = दृश्यनम् देखना, अनुभव करना, या सत्य को प्रत्यक्ष जानना।इसलिए 'दर्शन' का तात्पर्य केवल बाह्य देखने से नहीं, बल्कि तत्वों के यथार्थ स्वरूप का बोध करना है। इसी आधार पर विश्व में अपने वैभव के लिए ख्यातिप्राप्त किसी भी देश के उस विभव की प्राप्ति के लिए किये हुए प्रयासों का अध्ययन ऐसे की छह रखने वाले देशों को बहुत बोधप्रद होता ही है | देश की वैभव प्राप्ति ,देश के भाग्योदय की शिल्पकार सदा ही उस देश की सामान्य प्रजा होती है,इसी परिदृश्य में भारतीय राजनीतिक दर्शन में सुशासन का स्वरूप केवल शासन की प्रशासनिक व्यवस्था तक सीमित नहीं है अपितु यह धर्म, नैतिकता, न्याय और लोककल्याण पर आधारित एक समग्र जीवन-दर्शन है। भारतीय चिंतन में शासन का उद्देश्य "सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय" के सिद्धांत पर केंद्रित रहा है, जहाँ शासक को "राजधर्म" का पालनकर्ता और जनसेवक माना गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य के अर्थशास्त्र, महर्षि मनु के मनुस्मृति, और महाभारत के शान्ति पर्व जैसे ग्रंथों में शासन की आदर्श संकल्पना स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य होती है। इनमें शासन की सफलता का आधार न केवल प्रशासनिक दक्षता प्रत्युत प्रजा के प्रति उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, न्यायप्रियता और दया जैसे गुणों पर रखा गया है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारकों ने शासन को धर्म से अभिन्न माना है। उनके अनुसार, धर्माधारित शासन ही वास्तविक सुशासन है, जिसमें नीतिशीलता, नीति-नियोजन और सामाजिक न्याय का समन्वय होता है। इस दृष्टि से सुशासन केवल सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं अपितु सामाजिक व्यवस्था और लोककल्याण की प्रक्रिया है। राजा का कर्त्तव्य केवल राज्य की रक्षा करना नहीं बल्कि प्रजा के सुख और विकास को सुनिश्चित करना भी है।आधुनिक समय में जब सुशासन की अवधारणा को पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और सहभागिता के मानकों से मापा जाता है, तब प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण हमें यह बतलाता है कि नैतिकता और आचारसंहिता के बिना कोई शासन दीर्घकालिक और लोकहितकारी नहीं हो सकता। अतः प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन में सुशासन के सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं और आधुनिक शासन तंत्र के लिए नैतिक एवं आध्यात्मिक दिशा प्रदान करते हैं।

शब्द कुंजी : सुशासन, राजधर्म, भारतीय राजनीतिक दर्शन, लोककल्याण, धर्माधारित शासन।

भूमिका-

RESEARCH ARTICLE

विधिना | Vidhina

ISSN: (Online): 3049-3986

Publishing Today, Inspiring Tomorrow

Published Online | Special Issue. | Nov.2025 | pp.145-150

Quarterly, Multilingual, Multidisciplinary, Peer-Reviewed E-Research Journal

सुशासन शब्द की व्युत्पति सु (उत्तम, अच्छा) + *शासन* (प्रशासन, शासन करना)[1] राजा धर्मेण भूमिं रक्षेत्।" अर्थात् राजा को धर्म के अनुसार शासन करना चाहिए।[2] अतः सुशासन वह शासन प्रणाली है जो सहभागी, पारदर्शी, उत्तरदायी, प्रभावी तथा न्यायसंगत हो और जो विधि-राज के अंतर्गत जन-कल्याण पर केंद्रित हो।" समग्र रूप से जब देखा जाए तो सुशासन एक ऐसी शासन-प्रणाली है जो धर्म, नैतिकता और जन-कल्याण पर आधारित होकर पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, सहभागिता, और न्याय के माध्यम से समाज के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करती है।"[3] इस परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि सुशासन का अर्थ है शासन का वह आधार जिसमें एक सरकार अथवा प्रशासनिक संस्था अपने अधिकारों का उपयोग, निर्णय लेने की प्रक्रिया और नागरिकों के साथ किए गए समझौतों का प्रभावी और नैतिक प्रणाली से पालन करती है। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में सुशासन पारदर्शिता, जवाबदेही, सहभागिता, कानून का पालन, और अधिकारों का सम्मान के रूप में देखा गया है[4] । जिसका उद्देश्य जनता की भलाई और समाज के प्रत्येक वर्ग की समृद्धि को सुनिश्चित करना **।भारतीय विद्वानों के दृष्टिकोण से देखा जाये तो यह शोध पत्र उस दृष्टि से भी स्रोत दर्शाता है- डॉ. बी. एल. फडके का दृष्टिकोण है कि**"सुशासन का आशय ऐसी शासन-व्यवस्था से है जिसमें जनसाधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति, न्यायपूर्ण व्यवहार, उत्तरदायित्व और प्रशासनिक निष्पक्षता का समन्वय हो।"[5]. **प्रो. आर. बी. जैन का मत है कि**"सुशासन वह प्रक्रिया है जिसमें सरकार की कार्यप्रणाली जनसाधारण के प्रति उत्तरदायी, पारदर्शी और भागीदारीमूलक हो तथा नीतियाँ लोकहित पर केंद्रित हों।"[3] **प्रो. सुभाष कश्यप उक्त शब्द को इस तरह परिभाषित करते हैं** "सुशासन केवल प्रशासनिक दक्षता नहीं, बल्कि यह नैतिक उत्तरदायित्व और नागरिकों की भागीदारी पर आधारित शासन-प्रक्रिया है।"[4]**डॉ. सुरेन्द्रनाथ शर्मा का मत है कि**"सुशासन का वास्तविक अर्थ 'सद् शासन' है, जिसमें नीति-निर्माण, कार्यान्वयन और जन-निगरानी तीनों में संतुलन और नैतिकता का निर्वाह हो।"[5] **प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद मानते हैं कि**"सुशासन वह है जो लोकहित, लोकभागीदारी और लोकनियंत्रण के आदर्शों पर टिका हो शासन को धर्ममूलक और लोककेंद्रित बनाता है।"[6] **उपरोक्त कथनों के आधार पर समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि** 'सुशासन' केवल प्रशासनिक दक्षता नहीं **अपितु** यह लोककल्याण, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, नैतिकता और नागरिक सहभागिता पर आधारित ऐसी शासन-व्यवस्था है जो धर्म और नीति के समन्वय से चलती है।"**अतः** सुशासन की अवधारणा आज के लोकतांत्रिक विमर्श में अत्यंत महत्वपूर्ण है, किन्तु इसकी **गहनता** भारत के प्राचीन राजनीतिक दर्शन में **प्रमुख रूप से द्रष्टव्य होती** हैं। **हमारे** प्राचीन ग्रंथों में शासन को केवल सत्ता का उपकरण नहीं **प्रत्युत** धर्म, नैतिकता और लोककल्याण का माध्यम माना गया है।

भारतीय वाङ्मय में सुशासन की अवधारणा

भारतीय चिंतन परम्परा में 'सुशासन' केवल प्रशासनिक दक्षता या नीतिगत सफलता का विषय नहीं है बल्कि यह 'धर्माधिष्ठित शासन' की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। पश्चिमी राजनीतिक दर्शन में सुशासन का सम्बन्ध सत्ता के प्रयोग में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, और जनसहभागिता से है, जबकि भारतीय वाङ्मय में यह राजधर्म, लोककल्याण और नैतिक शासन के रूप में वर्णित है। वैदिक काल में जब हम देखते हैं तो ऋग्वेद और अथर्ववेद में शासन को 'राष्ट्रस्य रक्षकः' कहा गया है।[7]राजा का कार्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि ऋत (सत्य और व्यवस्था) की रक्षा करना है।"राजा सत्येन राज्यानि गोपायति"[8]अर्थात् राजा सत्य (धर्म) के माध्यम से राज्य की रक्षा करता है। यहाँ *सुशासन* का अर्थ है सत्य, न्याय और धर्माधारित व्यवस्था। इसी परिप्रेक्ष्य में हमारे उपनिषदों में शासन का आधार *स्वराज्य* (अंतःशासन) बताया गया है।[9] "आत्मानं रथिनं विद्धि..."यह दर्शाता है कि बाह्य शासन तभी सुशासित हो सकता है जब व्यक्ति अपने भीतर आत्मानुशासन स्थापित करे। इस प्रकार भारतीय परम्परा में सुशासन का मूल आत्म-नियंत्रण और आत्म-शासन है। महाभारत के शान्तिपर्व में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को शासन के सिद्धांत बताते हुए कहते हैं कि "राजा धर्मेण पृथिवीं पालयेत्" राजा को धर्म के अनुसार पृथ्वी की रक्षा करनी चाहिए। यहाँ सुशासन का प्रमुख तत्व है न्याय, दण्डनीति, और लोकमंगल। भीष्म आगे कहते हैं "प्रजाहितं राजधर्मस्य मूलं।" अर्थात्, जनहित ही राजधर्म और सुशासन का मूल है।[10] जब हम अपनी परम्परा में वाल्मीकि रामायण का अवलोकन करते हैं तो वहां

RESEARCH ARTICLE

विधिना | Vidhina

ISSN: (Online): 3049-3986

Publishing Today, Inspiring Tomorrow

Published Online | Special Issue. | Nov.2025 | pp.145-150

Quarterly, Multilingual, Multidisciplinary, Peer-Reviewed E-Research Journal

श्रीराम के शासन को आदर्श शासन कहा गया "रामो राजमणिः सदा विजयते।"[11] तुलसीदास ने 'रामराज्य' को सुशासन का प्रतीक बताया"दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहिं काहुहि व्यापा।"[12] रामराज्य में न्याय, समानता, भयमुक्त समाज, और नैतिकता की स्थापना थी यही भारतीय सुशासन का आदर्श रूप है। इसी अनुरूप अर्थशास्त्र में चाणक्य का सुशासन सिद्धांत यह बतलाता है किशासन का उद्देश्य केवल राज्यसुरक्षा नहीं, बल्कि "योगक्षेम" अर्थात् प्रजा के कल्याण और सुख का संरक्षण बताया गया।"प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥"[13]अर्थात्, राजा का सुख प्रजा के सुख में है।यही सुशासन का मूल है प्रजाहित और न्यायप्रिय शासन। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।"[14] अर्थात्, शासक (श्रेष्ठ) का आचरण ही प्रजा के आचरण का मानक बनता है। सुशासन का मापदंड यहाँ नैतिक नेतृत्व और कर्तव्यनिष्ठा है। लोकसंग्रह अर्थात् लोककल्याण के लिए कर्म भारतीय सुशासन का मूल तत्त्व है। आधुनिक बहर्तीय चिंतकों को देखा जाये तो वहां हम विशेष रूप से पंडित दीनदयाल उपाध्याय को उद्धृत करते हैं इन्होंने न"एकात्म मानवदर्शन " में शासन को 'धर्माधारित लोककल्याणकारी तंत्र' कहा।[15]महात्मा गांधी ने "रामराज्य" को जनहित और नैतिक शासन का प्रतिरूप माना।[16]डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा "भारतीय शासन व्यवस्था धर्म और नैतिकता पर आधारित रही है।"[17] अतः कहा जा सकता है कि **भारतीय वाङ्मय में सुशासन केवल प्रशासनिक व्यवस्था नहीं, बल्कि धर्म, न्याय, लोककल्याण और आत्मनियंत्रण पर आधारित शासन प्रणाली है।वेदों में राजा को सत्य और ऋत की रक्षा करने वाला बताया गया है; उपनिषदों में शासन का आधार आत्म-शासन माना गया; महाभारत में *राजधर्म* और *जनहित* को सुशासन का मूल बताया गया; रामायण में रामराज्य को आदर्श शासन का प्रतीक माना गया; और अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने कहा राजा का सुख प्रजा के सुख में है।**

शोध पद्धति -

यह शोध पत्र गुणात्मक और व्याख्यात्मक प्रकृति का है। इसमें तथ्यों का मात्रात्मक विश्लेषण न होकर, भारतीय वाङ्मय (वेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, अर्थशास्त्र आदि) में वर्णित विचारों, सिद्धांतों और अवधारणाओं का अर्थग्रहण, व्याख्या और तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

साहित्य समीक्षा

यह शोध पत्र भारतीय सभ्यता की शासन-दृष्टि को इस तरह समक्ष रखता है कि हमारी जीवन शैली सत्ता या अधिकार तक सीमित नहीं रही अपितु यह सदा से धर्म, नीति और लोककल्याण के संतुलन पर आधारित रही है। "सुशासन" का आधुनिक प्रशासनिक अर्थ पूर्णरूपेण बीसवीं सदी में गढ़ा गया हो, किंतु उसका मूल भाव भारतीय वाङ्मय में हजारों वर्षों पूर्व से निहित रहा है। वेदों, उपनिषदों, महाकाव्यों, धर्मशास्त्रों और अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथों में शासन को केवल शक्ति का प्रदर्शन नहीं बल्कि एक नैतिक कर्त्तव्य और लोककल्याण की साधना के रूप में देखा गया है। जिसे शोध पत्र भूमिका में शब्दबद्ध किया गया है चूंकि ऋग्वेद में शासन की मूल भावना "ऋतम्" अर्थात् सत्य, संतुलन और व्यवस्था में निहित है। यहाँ शासन को धर्म पर आधारित माना गया है। ऋग्वैदिक ऋषि कहते हैं "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत"[18] अर्थात् शासन वही है जो सत्य और धर्म से संचालित हो। अथर्ववेद में कहा गया है कि राजा वह है जो धर्मपूर्वक शासन करता है और प्रजा को पीड़ा नहीं पहुँचाता। इस प्रकार वैदिक साहित्य में शासन का उद्देश्य जनकल्याण और न्याय है, जो आज के दायित्वबोध और पारदर्शिता जैसे आधुनिक सुशासन सिद्धांतों का आधार है। वहीं उपनिषदों में शासन की धारणा और गहन हो जाती है। जिसमें शासन को आत्मशासन से जोड़ा गया है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया"यथा राजा तथा प्रजा"[19] राजा का आचरण ही समाज की दिशा निर्धारित करता है। शासन को बाहरी नियंत्रण नहीं प्रत्युत आंतरिक अनुशासन का प्रतीक माना गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में "स्वराज्य" की जो संकल्पना मिलती है, वही आगे चलकर महात्मा गांधी के 'हिन्द स्वराज' में आत्मशासन की

RESEARCH ARTICLE

विधिना | Vidhina

ISSN: (Online): 3049-3986

Publishing Today, Inspiring Tomorrow

Published Online | Special Issue. | Nov.2025 | pp.145-150

Quarterly, Multilingual, Multidisciplinary, Peer-Reviewed E-Research Journal

आधुनिक व्याख्या के रूप में विकसित होती है। यहाँ शासन का आधार केवल नियम या दण्ड नहीं, बल्कि आत्मसंयम और नैतिक बोध है। महाकाव्यों में यह दार्शनिक अवधारणा व्यवहारिक रूप में प्रकट होती है। रामायण में वर्णित रामराज्य भारतीय सुशासन का सर्वोच्च आदर्श है। राम का शासन समानता, न्याय, दया और धर्म पर आधारित था। तुलसीदास ने लिखा "दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहि काहुहि व्यापा" यह पंक्ति दर्शाती है कि सुशासन वह है जहाँ नागरिक भय और पीड़ा से मुक्त हों। इसी अनुरूप महाभारत के शान्तिपर्व में भीष्म और युधिष्ठिर के संवादों में शासन के सिद्धांत स्पष्ट किए गए हैं। भीष्म ने कहा "राजा धर्मेण भूमिं पालयेत्"[20] अर्थात् राजा को धर्म के अनुरूप पृथ्वी का पालन करना चाहिए। यहाँ शासन का मूलाधार नैतिकता है, न कि मात्र शक्ति।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारत में शासन की तात्त्विक और प्रशासनिक समझ का सर्वाधिक व्यवस्थित ग्रंथ है। कौटिल्य ने शासन को "विज्ञानाधारित कला" कहा और यह प्रतिपादित किया कि "राजा का सुख प्रजा के सुख में निहित है।" उनका यह कथन "प्रजा सुखे सुखं राज्ञः, प्रजानां च हिते हितम्"[21] आधुनिक लोकतांत्रिक शासन की नैतिक जड़ें प्रकट करता है। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और दक्षता जैसे सिद्धांत प्रतिपादित किए, जो आज के सुशासन से मेल खाते हैं । हमारे धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र ग्रंथों में शासन की नैतिकता और आचरण को प्रमुखता दी गई है । मनुस्मृति में कहा गया है "राजा धर्मस्य कारणम् अर्थात् राजा स्वयं धर्म का साधक है और उसके आचरण से ही राज्य की दिशा निर्धारित होती है। भर्तृहरि के नीतिशतक में राजधर्म को धर्म का सर्वोच्च रूप बताया गया है "राजा नृपाणां नृपतिः स धर्मो।" इस प्रकार शासन के तीन प्रमुख स्तंभ धर्म, नीति और लोकहित भारतीय सुशासन की नींव बने। आधुनिक युग में भारतीय चिंतकों ने इन परंपरागत अवधारणाओं की नयी व्याख्या की। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा कि भारतीय शासन का आधार सदैव "नैतिक चेतना" रही है। महात्मा गांधी ने 'हिन्द स्वराज' में शासन को आत्मशासन का रूप बताया"सच्चा शासन वह है जो व्यक्ति को आत्मनियंत्रण सिखाए।" पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने एकात्म मानवदर्शन में शासन का उद्देश्य "समग्र मानव" का विकास बताया, जो धर्माधारित और सामाजिक उत्तरदायित्व से युक्त है। इसी प्रकार डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने कहा कि भारतीय शासन की विशेषता शक्ति और नैतिकता का संतुलन है, जहाँ धर्म शासन का नियामक तत्व है।

जब इन सिद्धांतों की तुलना पश्चिमी राजनीतिक चिंतकों से की जाती है, तो यह अंतर स्पष्ट होता है कि पश्चिम ने शासन को विधिकता और शक्ति के दृष्टिकोण से देखा, जबकि भारतीय चिंतन ने इसे धर्म और लोकमंगल के नैतिक मूल्य से जोड़ा । यहां कौटिल्य का "लोककल्याणकारी शासन" आज के की अवधारणा से साम्य रखता है। इस प्रकार भारतीय सुशासन की अवधारणा केवल प्रशासनिक न होकर आध्यात्मिक और नैतिक दोनों है। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन में सुशासन का स्वरूप धर्म, न्याय, दया, और लोककल्याण पर आधारित रहा । वैदिक काल से लेकर मौर्यकाल तक शासन का उद्देश्य सत्ता-संचय नहीं बल्कि जनसेवा था। रामराज्य इसका प्रतीकात्मक आदर्श है, जहाँ शासन और समाज दोनों धर्ममय हैं। महाभारत का राजधर्म और अर्थशास्त्र की नीति, दोनों आधुनिक लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों का दार्शनिक आधार बनते हैं। आधुनिक संदर्भों में यह परंपरा सुशासन ,नेतृत्व लोककल्याणकारी जैसी संकल्पनाओं को गहराई देती है।

अतः स्पष्ट है कि भारतीय सुशासन की परंपरा केवल इतिहास की धरोहर नहीं अपितु वर्तमान शासन व्यवस्था के लिए प्रेरणा-स्रोत भी है। यह विचार हमें यह सिखाता है कि सच्चा शासन वही है जो शक्ति और नीति के संतुलन में धर्म को आधार बनाकर समाज के सर्वांगीण कल्याण के लिए समर्पित हो। आज के लोकतांत्रिक युग में सुशासन , नैतिक नेतृत्व) और लोककल्याणकारी प्रशासन की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और सामाजिक विषमताओं के बीच शासन की गुणवत्ता ही राष्ट्र की प्रगति और स्थिरता का मापदंड बन गई है।भारतीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो प्राचीन ग्रंथों में वर्णित धर्माधारित शासन आज भी उतना ही आवश्यक है जितना वैदिक काल में था। जब नीति निर्णयों में नैतिकता, पारदर्शिता और लोकहित को प्रमुखता दी जाती है, तभी शासन जनविश्वास अर्जित करता है। रामराज्य की भावना, कौटिल्य के अर्थशास्त्र का प्रजाहित सिद्धांत, और गीता का नैतिक

RESEARCH ARTICLE

विधिना | Vidhina

ISSN: (Online): 3049-3986

Publishing Today, Inspiring Tomorrow

Published Online | Special Issue. | Nov.2025 | pp.145-150

Quarterly, Multilingual, Multidisciplinary, Peer-Reviewed E-Research Journal

नेतृत्व का आदर्श ये सभी आधुनिक लोकतंत्र में भी प्रशासनिक नीतियों की नैतिक रीढ़ बने हुए हैं।अतः कहा जा सकता है कि "सुशासन की आत्मा आज भी धर्म, न्याय, पारदर्शिता और लोककल्याण है।"यह केवल शासन की नीति नहीं, बल्कि जन-सेवा का नैतिक संकल्प है, जो भारतीय चिंतन की निरंतर धारा के रूप में आज के शासन तंत्र को दिशा प्रदान करता है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन में *सुशासन* को केवल शासन की तकनीक नहीं, बल्कि धर्म, नीति और लोककल्याण का समन्वित तंत्र माना गया है। वेदों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण और अर्थशास्त्र में यह स्पष्ट है कि शासन तभी सफल होता है जब वह धर्म पर आधारित, न्यायपूर्ण और प्रजाहितकारी हो। राजा या शासक को धर्म का रक्षक कहा गया है "राजा धर्मस्य कारणम्।"रामराज्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, और गीता का लोकसंग्रह सिद्धांत ये सभी इस बात के द्योतक हैं कि शासन की सार्थकता केवल सत्ता में नहीं, बल्कि जनकल्याण, नैतिकता और उत्तरदायित्व में निहित है। वर्तमान युग में, जब लोकतंत्र मूल्य-आधारित शासन की अपेक्षा करता है, तब भारतीय वाङ्मय की यह अवधारणा और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। यदि आज का नेतृत्व धर्म, सत्य, पारदर्शिता और लोककल्याण को शासन के मूल में स्थापित करे, तो वही सच्चे अर्थों में सुशासन कहलाएगा |

संदर्भ –

1. गुरु, क. प. (प्रकाशन वर्ष अज्ञात). *भारतीय शासन और दर्शन*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 210.
2. पाणिनि. (सं.). *अष्टाध्यायी* (5.3.96). वाराणसी: चौखंबा संस्कृत सीरीज.
3. मनु. (2010). *मनुस्मृति* (सं. डॉ. गंगानाथ झा). वाराणसी: चौखंबा संस्कृत सीरीज. पृ. 257.
4. कौटिल्य. (1992). *अर्थशास्त्र* (सं. आर. पी. कंगले). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 112.
5. फडके, बी. एल. (2005). *भारतीय शासन एवं राजनीति* (पृ. 212). दिल्ली: अटलांटिक प्रकाशन.
6. जैन, आर. बी. (2001). *सार्वजनिक प्रशासन के सिद्धांत* (पृ. 318). नई दिल्ली: दीप एंड दीप प्रकाशन.
7. कश्यप, सुभाष. (2010). *भारतीय शासन प्रणाली* (पृ. 164). नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
8. शर्मा, सुरेन्द्रनाथ. (2012). *भारतीय प्रशासनिक प्रणाली* (पृ. 251). जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.
9. प्रसाद, सिद्धेश्वर. (2008). *राजनीति और प्रशासन में लोकहित का सिद्धांत* (पृ. 203). नई दिल्ली: अवध पब्लिशिंग हाउस.
10. कौटिल्य. (2000). *अर्थशास्त्र* (संपा. आर. पी. कंग). दिल्ली: राष्ट्रीय प्रकाशन. पृ. 53.
11. वाल्मीकि. (2005). *रामायण*. गोरखपुर: गीताप्रेस.
12. तुलसीदास. (2007). *रामचरितमानस*. गोरखपुर: गीताप्रेस.
13. व्यास, कृष्णद्वैपायन. (1999). *महाभारत (शान्तिपर्व)*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
14. अथर्ववेद (सं. 6.70.1), ऋग्वेद (सं. 10.173). (सं.). *वेदसंहिता*. वाराणसी: चौखंबा संस्कृत सीरीज.
15. उपाध्याय, दीनदयाल. (1965). *एकात्म मानववाद*. दिल्ली: भारतीय जनसंघ प्रकाशन.
16. गांधी, मोहनदास करमचंद. (1958). *हिन्द स्वराज*. अहमदाबाद: नवलकिशोर प्रकाशन.
17. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1960). *भारतीय दर्शन*. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
18. दयानंद सरस्वती, स्वामी. (2012). *ऋग्वेद संहिता* (मंडल 10, सूक्त 190, मंत्र 1). वाराणसी: चौखंबा संस्कृत सीरीज. पृ. 742.

विधिना | Vidhina

ISSN: (Online): 3049-3986

Publishing Today, Inspiring Tomorrow

Published Online | Special Issue. | Nov.2025 | pp.145-150

Quarterly, Multilingual, Multidisciplinary, Peer-Reviewed E-Research Journal

19. व्यास, कृष्णद्वैपायन. (2008). *महाभारत (शान्तिपर्व, अध्याय 90, श्लोक 3)*. वाराणसी: चौखंबा संस्कृत सीरीज. पृ. 214.
20. कौटिल्य. (सं. आर. शास्त्री.*अर्थशास्त्र*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 53.
21. व्यास, कृष्णद्वैपायन. *महाभारत (शान्तिपर्व, अध्याय 59, श्लोक 6)*. वाराणसी: चौखंबा संस्कृत सीरीज.